आयदा फिफर की भारत यात्रा का वृत्तान्त

माधव केलकर

इतिहास के अध्ययन में अक्सर कहा जाता है कि किसी काल के समाज, प्रशासन आदि को जानने के स्रोतों में विदेशी नागरिकों के अवलोकन व उनके यात्रा वृत्तान्त भी काफी महत्व रखते हैं। यह बात भारत के इतिहास के लिए भी सही है।

पिछले दिनों मैंने एक सूची बनाने की कोशिश की जिसमें विगत ढाई हज़ार साल में भारत का भ्रमण करने वाले विदेशी यात्रियों के नाम, कहाँ से आए, कब आए, यात्रा का उद्देश्य, यात्री कौन थे (यानी राजदूत, व्यापारी, खोजी, अध्येता, शौकिया आदि) जैसी बातें लिखता गया।

मेरे ख्याल से आप भी एक ऐसी सूची बनाकर देखिए कि इसमें महिला यात्री कितनी हैं। आपके विचार से क्या महिलाएँ यात्रा करना पसन्द नहीं करती थीं, क्या लम्बी समुद्री यात्राएँ महिलाओं के लिए सुरक्षित थीं, क्या महिलाएँ यात्रा वृत्तान्त लिखना नहीं जानती होंगी? या कुछ और कारण भी होंगे जो तालिका नहीं दिखा पाई।

बहरहाल, मेरी तालिका में औपनिवेशिक काल में यूरोपीय महिलाओं द्वारा भारत में यात्रा की शुरुआत दिखाई देने लगी। कम-से-कम इस दौर में यह एहसास भी बनने लगा कि यात्रा करने वालों में सिर्फ पुरुष ही नहीं थे, इस पुरुष प्रधान गतिविधि में महिलाएँ भी शिरकत करने लगी थीं। औपनिवेशिक काल में कई महिलाओं ने भारत की यात्रा की। ऐलिज़ा फे ने यात्रा उपरान्त सन् 1817 में अपने खतों के मार्फत भारत के बारे में लिखा है। मारिया कालकॉट (1785-1842) व अन कैथेरिन इलवुड ने कम्पनी राज में भारतीय लोकजीवन के ब्यौरे दिए हैं। एमली ईडन (1785-1869) के भाई जब भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए तब उन्होंने भारत यात्रा की और आँखों देखी लिख गईं। 19वीं सदी के मध्य में सुश्री आर.एम. कूपलैंड ने भारत यात्रा की थी और 1857 के गदर में कम्पनी की हुकूमत को पहुँची क्षति के बारे में बताया। वैसे सुश्री कूपलैंड ने गदर के दौरान

ग्वालियर के किले में शरण ली थी और किसी तरह बचते-बचाते आगरा पहुँच सकी थीं।

महिला यात्रियों की इसी सूची में एक नाम ऑस्ट्रिया वासी आयदा फिफर (1797-1858) का है। आयदा को बचपन से ही यात्राओं का शौक था। विवाह और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के बाद वह मई 1846 में दुनिया की सैर के लिए निकल पड़ीं। ब्राज़ील, चिली, सिंगापुर आदि देशों को देखते-समझते वे नवम्बर 1847 को भारत पहुँचीं। भारत में उन्होंने लगभग छह महीने बिताए। कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, दिल्ली, कोटा, अजन्ता, बम्बई आदि जगहों पर कुछ समय बिताया, लोगों से मिलीं, राजाओं के ठाठ करीब से देखे और खास बात यह कि आयदा की यह यात्रा भारत में रेलवे के आगमन से पहले की है। इसलिए बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, पालकी के साथ-साथ स्टीमर का भी उपयोग किया गया इस यात्रा में। आयदा का यात्रा वृत्तान्त (अ वूमन्स जर्नी एराउंड द वर्ल्ड) 1851 में पहले जर्मन में और बाद में इंग्लिश में प्रकाशित हुआ।

यहाँ हम पहले आयदा की भारत यात्रा के संस्मरण पढ़ेंगे। बात संक्षेप में रहे और प्रमुख पहलू उभर सकें इसलिए इन्हें सम्पादित कर दे रहे हैं।

आयदा ने अपनी विश्व यात्रा की शुरुआत मई 1846 में की। ब्राज़ील, चिली, सिंगापुर, श्रीलंका व मद्रास बंदरगाह होते हुए वे 4 नवम्बर, 1847 को कलकत्ता पहुँचीं।

कलकत्ता

आयदा ने कलकत्ता में करीब पाँच हफ्ते बिताए होंगे। उन्होंने पाया कि हिन्दु चार जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बँटे हुए थे। आयदा ने देखा कि पाँचवाँ वर्ग अस्पृश्यों का भी है जिन्हें छूना वर्जित है। वे मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते। ये लोग निहायत ही गरीब थे और सामान्य रिहाइश से बाहर मुकर्रर जगहों पर झोपड़ियों में रहते थे।

ये चार जातियाँ अनेक उपजातियों में बँटी हुई थीं। इनमें से सत्तर को मांस खाने की अनुमति थी। साफ-साफ कहा जाए तो हिन्दु धर्म में खून बिखराने और मांस खाने की मनाही है, सिवाय उन 70 उपजातियों के जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। कुछ धार्मिक पर्वों पर पशुओं की बलि भी दी जाती है। गाय की बलि नहीं दी जाती। हिन्दुओं का भोजन मुख्य रूप से चावल, फल, मछली और सब्ज़ियाँ हैं। वे अपना जीवन औसत स्तर पर जीते हैं, दिन में केवल दो सामान्य भोजन करते हैं। वे पीने के लिए पानी, दूध के अलावा कभी-कभी कोका वाइन का उपयोग भी करते हैं।

यहाँ भारत में मुसलमान भी काफी संख्या में हैं। वे बेहद हुनरमन्द और

आयदा लौरा फीफर (1797-1858) ऑस्ट्रिया की एक यात्री व यात्रा वृत्तान्त की लेखिका भी थीं। आयदा के यात्रा वृत्तान्त को सात भाषाओं में अनुदित किया गया। वे बर्लिन और पेरिस की जियोग्राफिकल सोसायटी की सदस्य भी थीं, लेकिन महिला होने की वजह से वे रॉयल जियोग्राफिकल सोसायटी की सदस्य नहीं बन सकीं।

पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के बाद वे 1846 में दुनिया के सफर पर निकल पड़ीं। यात्राओं के दौरान अवलोकन व एहसासों को लिखते रहना और यात्रा समाप्ति के बाद यात्रा वृत्तान्त का प्रकाशन करवाना उनका प्रमुख मकसद बन गया था।

उनके द्वारा यात्राओं के दौरान इकट्ठा किए गए वनस्पतियों व पत्थरों के नमूनों को विएना और बर्लिन के प्राकृतिक संग्रहालयों में रखा गया था।

सक्रिय हैं। कई तरह के काम और व्यापार उनके हाथों में हैं। ऐसे कई काम जो हम औरतों के हाथों से देखने के आदी होते हैं उन्हें भी मुस्लिम पुरुषों को करते हुए देख सकते हैं। मसलन सफेद ऊन, रंगीन रेशम एवं सोने के तार से एम्ब्रॉयडरी करना। मुसलमान यूरोपीय लोगों के घर काम करने के भी इच्छुक होते हैं।

कलकत्ता बंगाल की राजधानी है, जो हुगली नदी के किनारे बसा है। आबादी लगभग छह लाख है। इनमें ब्रिटिश फौज शामिल नहीं है। दो हज़ार से ज़्यादा यूरोप वासी और अमरीकी भी हैं यहाँ। कलकत्ता शहर कुछ हिस्सों में बँटा हुआ है जैसे बिज़नेस टाउन, ब्लैक टाउन, यूरोपीय क्वॉर्टर्स आदि। इनमें बिज़नेस टाउन और ब्लैक टाउन संकरी गलियों, बेतरतीब झोपड़ियों एवं मकानों वाला हिस्सा है। यह काफी भीड़-भाड़ वाला भाग है। जब भी यहाँ से गाड़ी से गुज़रते हैं तो गाड़ीवाला लोगों को सावधान करते हुए चलता है।

जिन दिनों मैं कलकत्ता में थी मुझे चीफ जज श्रीमान पील के जन्मदिन की पार्टी में आमंत्रित किया गया था। लेकिन मैंने न्यौता अस्वीकार कर दिया

क्योंकि मेरे पास पार्टी में पहनने के लिए उपयुक्त कपड़े नहीं थे। लेकिन मेरी पार्टी में शरीक न होने की वजह को सिरे से खारिज कर दिया गया। मैंने कॉटन के रंगीन कपड़े पहने और श्रीमति कैमरॉन के साथ पार्टी में गई। वहाँ अन्य महिलाएँ थीं जिन्होंने सिल्क के कपड़े और महँगे गहने भी पहने थे। किसी को मेरी मौजूदगी से शर्मिन्दगी महसूस नहीं हुई। सभी ने मुझसे खुलकर बातचीत की और हर सम्भव तवज्जो दी।

मुझे पहले से बताया गया था कि कलकत्ता में हाथीपाँव बीमारी वाले अनेक लोग हैं, शहर के हर मोड़-नुक्कड़ पर गरीब व हालात के मारे लोगों को भयंकर रूप से सूजे हुए पाँवों के साथ देखा जा सकता है। मेरे पाँच हफ्तों के कलकत्ता प्रवास के दौरान मैंने यह पाया कि यह सच नहीं है। मैंने ब्राज़ील की राजधानी रियो में एक दिन में जितने हाथीपाँव के रोगी देखे उतने पूरे कलकत्ता प्रवास में भी नहीं दिखाई दिए।

कलकत्ता में एक मौके पर मैंने एक छोटे ज़मीदार यानी बाबू के घर की सैर की। इस बाबू की डेढ़ लाख पाउण्ड की जायदाद तीन भाइयों के बीच बँटी हुई है। परिवार प्रमुख मुझे घर के दरवाज़े से लिवाकर बैठक में ले गया। सात साल और चार साल के दो बच्चे मुझसे मिलने आए। उनसे मेरा परिचय करवाया गया। मेरे यह पूछने पर कि क्या ऐसा कोई रिवाज़ है कि लड़कों को ही मिलने के लिए भेजा जाता है, मेज़बान ने तुरन्त मुझे अपनी बेटियों से मिलने भेजा। छोटी बेटी छह महीने की थी और बड़ी नौ साल की। मेज़बान जो असहनीय इंग्लिश बोल रहा था, उसने बड़ी बेटी का परिचय सगाईशुदा के रूप में करवाया और मुझे शादी का न्यौता देते हुए बताया कि छह हफ्ते के बाद लड़की की शादी होनी है। इस बात पर मैंने हैरानी जताई कि लड़की ऐसे बन्धन के लिए काफी कम उम्र की है। लेकिन मेज़बान ने मुझे भरोसा दिलवाया कि लड़की को शादी के बाद उसके पति के हाथों सौप दिया जाएगा। यह पूछने पर कि क्या लड़की अपने भावी पति से प्यार करती है, मुझे बताया गया कि लड़की अपने पति को पहली बार शादी के दौरान ही देखेगी।

बाबू ने मुझे बताया कि हरेक व्यक्ति चाहता है कि जितनी जल्दी-से-जल्दी हो सके उसका दामाद आ जाए। इसलिए छोटी उम्र में लड़कियों की शादी सम्मान की बात है, वहीं बिन ब्याही लड़कियाँ पिता के लिए अपमानजनक हैं।

दो महिलाएँ अपनी ज़ेवरातदानियाँ लाईं और कीमती ज़ेवरात दिखाने लगीं। हिन्दु काफी रुपया कीमती पत्थरों और सोने व चांदी से कशीदाकारी किए मलमल पर खर्च करते हैं।

शादीशुदा औरतों को ऐसे कमरों में घुसने की मनाही थी जहाँ बाहर गली से भीतर झाँका जा सकता है। ऐसे में उसे बाहर से कोई पुरुष देख सकता था। विवाह के योग्य लड़कियाँ इसके मुकाबले फायदे में रहती हैं, वे अपनी आज़ादी का लाभ उठाते हुए व्यस्त गली को एक नज़र देख सकती थीं।

अमीर हिन्दुओं की पत्नियाँ या उच्च जाति से सम्बन्धित औरतें खुद को चीनी महिलाओं की तरह घर तक सीमित रखती हैं। पत्नियों के लिए आनन्द की बात सिर्फ इतनी है कि पतियों की कठोरता उन्हें इस बात की अनुमति देती है कि बन्द पालकियों से सफर करते हुए वे अपनी सहेलियों व रिश्तेदारों से मिल सकती हैं।

सम्भवतः हिन्दू पुरुष कई पत्नियों को रख सकते हैं। लेकिन इस अधिकार का उपयोग करते कुछ ही उदाहरण दिखाई दिए। पति के रिश्तेदार भी उसके साथ एक मकान में रहते हैं, लेकिन निवास के लिए अलग-अलग कमरे होते हैं। बड़ा बेटा अपने पिता के साथ भोजन करता है। लेकिन पत्नी, बेटी और छोटे भाई को ऐसा करने की अनुमति नहीं है। पुरुष हो या महिलाएँ, दोनों को तम्बाखू बेहद पसन्द है जिसे वे हुक्के में गुड़गुड़ाते हैं।

विवाह काफी खर्चीला काम होता है। ब्राह्मण तारों का अवलोकन कर कुछ गणनाएँ कर विवाह के लिए उपयुक्त दिन और दिन का घण्टा तय करता है। इस मुकर्रर समय को अन्तिम क्षणों में अवलोकन-गणना कर बदला जा सकता है। इस काम के लिए पण्डित जी महाराज को अतिरिक्त पैसा मिलता है।

सबसे डरावना दृश्य था हिन्दु श्मशान जहाँ - मृत देह को जलाया जाता है। हुगली नदी के किनारे बना श्मशान बस्ती के पास और लकड़ी बाज़ार के सामने है। श्मशान में चार चबूतरे बने हैं जहाँ शवदाह किया जा सकता है।

मौत के करीब पहुँचे इन्सान को लेकर रिश्तेदार वहाँ खामोशी से उसकी आखिरी साँस का इन्तज़ार कर रहे थे। मेरे पूछने पर बताया गया कि यदि ये तुरन्त नहीं मरते हैं तो इन्हें समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा गंगाजल देते हैं। लेकिन जल की मात्रा कम करते जाते हैं और पानी पिलाने की अवधि को बढ़ाते जाते हैं। जब एक बार इस जगह लाया जाता है तो मौत तो तय है, किसी भी कीमत पर। जैसे ही मौत होती है, देह ठण्डी होने से पहले उसे जलाने की जगह रख देते हैं।

किसी अमीर इन्सान का दाह संस्कार थोड़ा खर्चीला होता है। कभी-कभी एक हज़ार रुपए से भी ज़्यादा। रोज़वुड, चन्दन जैसी महँगी लकड़ियों का उपयोग होता है। इसके अलावा पण्डित, वादक एवं भाड़े की महिला

रिश्तेदार भी शवयात्रा का प्रमुख भाग होते हैं।

गरीब लोगों की शवयात्रा ऐसी नहीं होती। वे लोग मृतक को साधारण लकड़ी या गोबर के उपलों पर जलाते हैं। यदि वे यह सब भी नहीं खरीद सकते तो मृत देह को पत्थर से बाँधकर नदी में फेंक देते हैं।

कलकत्ता से बनारस

कलकत्ता में पाँच हफ्ते से ज़्यादा समय बिताने के बाद 10 दिसम्बर को मैं कलकत्ता से बनारस के सफर के लिए चल पड़ी। कलकत्ता से बनारस का ज़मीनी रास्ता 470 मील लम्बा है। कलकत्ता से गंगा नदी के रास्ते बनारस तक पहुँचा जा सकता है।

ज़मीनी रास्ते से सफर करने के लिए पालकी इस्तेमाल होती है जिसे पुरुष उठाते हैं और हर चार-छह मील की दूरी पर अन्य पुरुषों को पालकी सौंप देते हैं। सफर दिन-रात चलता रह सकता है। रात के समय एक इन्सान मशाल साथ लेकर चलता है। मशाल की रोशनी की वजह से जंगली जानवर दूर रहते हैं। पालकी से एक व्यक्ति की यात्रा का खर्च लगभग 200 रुपए या 20 पाउण्ड है।

नदी के रास्ते से सफर स्टीमर से किया जाता है। स्टीमर हर हफ्ते इलाहाबाद के लिए रवाना होता है।

स्टीमर से सफर 14 से 20 दिन का है। बनारस के लिए फर्स्ट कैबिन का किराया 257 रुपए और सैकेंड कैबिन का 216 रुपए है।

मैंने स्टीमर से यात्रा शुरू की। सफर के दौरान पटना, दानापुर, गाज़ीपुर आदि खास जगह आनी थीं। इन सभी जगहों पर स्टीमर रुका और मैंने थोड़ा समय हर शहर की सैर में लगाया।

मैंने पटना के बारे में पढ़ रखा था कि यहाँ की गलियाँ ऊँटों और हाथियों से भरी होती हैं। लेकिन मुझे पटना की गलियों में ऐसा कुछ भी नहीं दिखा। कुछ बैलगाड़ी और घुड़सवार ज़रूर दिखाई दिए।

दानापुर में घूमते हुए मुझे पहली बार हाथी दिखाई दिया। शहर के बाहर आठ खूबसूरत हाथी मौजूद थे।

गाज़ीपुर गुलाब के बगीचों और गुलाब जल व इत्र के लिए मशहूर है। गुलाब जल व इत्र बनाने का तरीका कुछ इस प्रकार है। 40 पौण्ड गुलाब को 60 पौण्ड पानी में डालते हैं। अब धीमी आँच पर आसवन किया जाता है। आसवन से लगभग 30 पौण्ड गुलाब जल मिलता है। इसमें और 40 पौण्ड गुलाब मिलाया जाता है। आसवन से करीब 20 पौण्ड आसुत जल मिलता है।

आसुत जल को बड़ी परातों में भरकर रात की ठण्डी हवा के सम्पर्क के लिए छोड़ दिया जाता है। सुबह पानी पर तैरती हुई तेल की परत मिलती है। इसे पानी पर से हटा लिया जाता है। इस तरह लगभग एक-डेढ़ औंस इत्र मिलता है। गाज़ीपुर में एक औंस इत्र की कीमत 40 रुपए है।

बनारस

बनारस हिन्दुओं के लिए बेहद पवित्र शहर है, जिस तरह मुसलमानों के लिए मक्का और कैथोलिक ईसाइयों के लिए रोम। इस पवित्रता के बारे में हिन्दुओं का ऐसा मानना है कि जो भी इन्सान इस शहर में चौबीस घण्टे गुज़ार लेता है ईश्वर उसकी रक्षा करते हैं, चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो। यहाँ के लोगों के धार्मिक विचारों का यह खुलापन सराहनीय है और उन कुछ ईसाई समूहों के लिए शर्म की बात है जो पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं।

शहर बहुत ही खूबसूरत है, खास तौर पर जब इसे नदी की ओर से देखा जाए, क्योंकि तब शहर की कई कमियाँ दिखाई नहीं देतीं। करीब दो मील तक फैले हुए मकान और हवेलियाँ, उनके सामने बनी खूबसूरत सीढ़ियों की कतारें, पत्थरों का स्थापत्य और तोरण द्वार सब चमत्कृत करने वाला है।

बनारस में राजा जयसिंह द्वारा बनवाई गई वेधशाला स्थापत्य का एक शानदार नमूना है। यहाँ एक साधारण-सा टेलिस्कोप भी नहीं दिखाई दिया। सभी उपकरण पत्थरों से बने हुए बड़े-बड़े ढाँचे थे। ऊँचे चबूतरे, इन पर बने हुए अर्धवृत्ताकार और क्वारडिक घेरे। इन पर कुछ चिन्हित किया हुआ है, कुछ लिखा है, कुछ लकीरें भी हैं। इन खगोलीय उपकरणों की मदद से ब्राह्मण खगोलीय अवलोकन और गणनाएँ करते आए हैं। हमने अवलोकन और गणनाओं में व्यस्त ब्राह्मणों से भी मुलाकात की।

बनारस भारत में विविध शिक्षाओं को सीखने का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ छह हज़ार ब्राह्मण हैं जो खगोलीय निर्देश देते हैं और संस्कृत एवं विज्ञान पढ़ाते हैं।

बनारस में मेरे मेज़बान मुझे एक दिन सारनाथ लेकर गए। सारनाथ लगभग 5 मील दूर है बनारस से। वहाँ बड़ी-बड़ी ईंटों से बने तीन टीलेनुमा खण्डहर हैं। अँग्रेज़ सरकार ने इन खण्डहरों के बारे में और जानने के लिए उत्खनन भी करवाया था लेकिन कोई खास मालूमात नहीं मिल सके।

यहीं पास में ही नील के खेत देखे। मैंने पहली दफा नील के पौधों को देखा था - लगभग तीन फीट ऊँचे, नीली-हरी पत्तियाँ। फसल आम तौर पर अगस्त में तैयार हो जाती है। पौधों के तनों को यथासम्भव ज़मीन के करीब से काटते हैं। कटे हुए पौधों के बण्डल बना लेते हैं। इन्हें लकड़ी के बड़े हौदों

में डाल देते हैं। हौद में पानी भरकर इन बण्डलों पर लकड़ी के पटिए रखते हैं। इन पटियों पर पत्थर रखकर बण्डलों को दबाया जाता है। पानी के गुणधर्म के हिसाब से आम तौर पर 16 घण्टे बाद या कुछ दफा कुछ दिनों बाद किण्डवन (फर्मेंटेशन) की प्रक्रिया शुरू होती है। जब पानी का रंग गहरा हरा हो जाता है तो पानी को लकड़ी के दूसरे बर्तन में ले जाते हैं, इसमें चूना मिलाकर लकड़ी के बेलचों से हिलाते हैं। हिलाने की क्रिया तब तक चलती है जब तक नीला अवसाद तली में इकट्ठा न हो जाए। जब तली में नीला पदार्थ इकट्टा हो जाता है तो पानी को बर्तन से बाहर निकाल लेते हैं। नीले पदार्थ को लिनेन की थैलियों में रखकर सुखाया जाता है। जैसे ही नील सूख जाती है, इसे टुकड़ों में तोड़कर पैक कर लिया जाता है।

बनारस में एक सज्जन की मेहरबानी से मुझे किसानों और ज़मीन मालिकों के बीच के सम्बन्धों के बारे में जानकारी मिली। यहाँ खेतिहर मज़दूरों के पास ज़मीन का मालिकाना हक नहीं है। ज़मीन का मालिक या तो ईस्ट इंडिया कम्पनी है या स्थानीय राजा-ज़मीदार। ज़मीन खेतिहरों को किराए पर दी जाती है। ज़मीन का मालिक फसल तैयार होने के पहले से ही किराए का तकादा करने लगता है और गरीब किसान पैसा देने की स्थिति में नहीं होता। ऐसे हालात में किसान अपनी अधपकी फसल को आधी कीमत पर बेच देता है। ज़मीन का मालिक स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर उस फसल को खरीद लेता है। दुर्भाग्य से किसान बार-बार कम संसाधनों के साथ खुद को और अपने परिवार को जीवित रखने के लिए मजबूर हो जाता है।

एक अँग्रेज़ जिसका मैं नाम भूल रही हूँ वो विज्ञान सम्बन्धी किसी काम से भारत की यात्रा कर रहा था। उसने साबित किया कि जब किसान स्थानीय राजाओं के शासन में थे उसकी तुलना में, कम्पनी राज में किसानों की दशा बेहद खराब है।

कहा जाता है कि भारत मुक्त अँग्रेज़ी हुकूमत के आधीन है। लेकिन मैंने पाया कि यहाँ किसानों की दशा ब्राज़ील के गुलामों से भी बुरी है।

दिल्ली

दिल्ली यमुना के किनारे बसा एक शहर है। मुझे बताया गया था कि यहाँ की आबादी एक लाख है और उनमें 100 यूरोपीय नागरिक हैं। लेकिन ब्रूकनर के मुताबिक आबादी पाँच लाख है।

मैंने भारतीय शहरों में अभी तक इतनी चौड़ी और सुन्दर गलियाँ नहीं देखीं थीं। चाँदनी चौक यहाँ का प्रमुख इलाका है। यहाँ पौना मील लम्बी और सौ

फीट चौड़ी गली है। साथ में एक नहर जिसका कुछ हिस्सा पानी से और कुछ कचरे से भरा हुआ था। गली के साथ बने मकान कुछ विशेष नहीं थे। मकानों के पोर्च में बिक्री के लिए सस्ता सामान रखा हुआ था। मैंने दुकानों में कोई कीमती सामान नहीं देखा। शाम के समय कुछ कीमती पत्थर लालटेन की रोशनी में चमक रहे थे। इनके बारे में मैंने कई यात्रियों से सुन रखा था। देसी कारीगरों द्वारा सोने-चांदी के काम किए हुए शॉल में जितनी बारीकी और खूबसूरती से काम किया गया था वैसा पेरिस में भी नहीं दिखाई देता। सोने-चांदी-रेशम का काम किए कश्मीरी शॉल की कीमत 4000 रुपए होती है। कारीगरों के सरल उपकरणों-मशीनों के बावजूद उनकी दक्षता को देखकर अचरज होता है।

चांदनी चौक पर शाम बिताना काफी रुचिकर था। यहाँ गरीब और अमीर भारतीयों के जीवन को देखा जा सकता है। किसी भी और शहर में इतने ज़्यादा राजकुमार, दरबारी नहीं होंगे। पेंशनयाफ्ता राजा, उनके रिश्तेदार, कुल जमा कुछ हज़ार। जब ये सजे-सँवरे हाथियों पर चढ़कर कभी-कभार जनता के बीच जाते हैं तो एक जुलूस जैसा नज़ारा होता है - हाथी, घोड़े, चाकर और आधी खुली गाड़ियों में सवार उमंग से भरी खूबसूरत औरतें। यदि आपको सीधे-सीधे यह न मालूम हो कि कोई औरत किस वर्ग से सम्बन्धित है, तो बड़ा ही मुश्किल है कि औरतों के व्यवहार या हावभाव को देखकर उनकी स्थिति के बारे में कुछ कहा जा सके। दुर्भाग्य से किसी अन्य देश के मुकाबले भारत में एक खास वर्ग की काफी औरतें हैं। इसका प्रमुख कारण एक अप्राकृतिक परम्परा है जिसके तहत हर परिवार लड़की के जन्म के कुछ महीनों के भीतर ही उसका विवाह कर देता है। यदि लड़की का पति शादी के तुरन्त बाद या कुछ साल बाद जब भी मरता है, तो लड़की को विधवा करार दिया जाता है। इसके बाद वह दोबारा शादी नहीं कर सकती। सामान्यतः वो इसके बाद नर्तकी बन जाती है। विधवाओं के हालात को बदकिस्मती से जोड़कर देखा जाता है। यह माना जाता है कि वैधव्य किसी औरत के पूर्वजन्म के ऐसे किसी कर्म का नतीजा है जिसके लिए वो इसकी पात्र थी। भारत में लड़कियाँ अपनी ही जाति में शादी कर सकती हैं।

भारत में मुगल बादशाह को सालाना पेंशन 14 लाख रुपए मिलती है। उनकी अपनी आमदनी भी है, फिर भी बादशाह के हालात बनारस के राजा से अच्छे नहीं हैं। बादशाह को अपने 300 परिजनों, अपने दरबारियों, नौकरों-चाकरों, हरम की औरतों आदि का पालन-पोषण करना होता है। इसके अलावा हाथी, घोड़े, ऊँट आदि का भरण-पोषण भी करना है। इस सब की वजह से शाही खज़ाना हमेशा खाली ही रहता है।

एक दिन घर लौटते समय हमने राजा जयसिंह द्वारा बनवाई गई खगोलीय वेधशाला देखी। ऐसी ही वेधशाला हमने बनारस में भी देखी थी। दोनों जगह वेधशाला की बनावट एक जैसी ही थी। बनारस में अभी तक वेधशाला काफी संरक्षित है लेकिन दिल्ली में वेधशाला खण्डहर हो गई है। कुछ यात्रियों के अनुसार ये स्मारक भारतीय कला का अनोखा नमूना है।

दिल्ली से कोटा

मुझे दिल्ली से कोटा-उज्जैन-इन्दौर होते हुए अजन्ता-ऐलोरा जाना था। ऐलोरा से बम्बई और फिर घर वापसी।

जब मैं कलकत्ता में थी तब मुझसे आग्रह किया गया था कि मैं दिल्ली के आगे अपना सफर जारी न रखूँ। मुझे बताया गया कि वो भूभाग अँग्रेज़ी हुकूमत के तहत नहीं है, दूसरे वहाँ के लोग अपेक्षाकृत कम सभ्य हैं। मुझे ठग या फाँसीगरों के किस्से सुनाए गए।

दिल्ली से कोटा का सफर लगभग 290 मील का है। मेरे पास यात्रा के साधन के रूप में तीन विकल्प थे - पालकी, बैलगाड़ी, ऊँट। इनमें से कोई भी बहुत तेज़ नहीं था। कोई मुख्य सड़क नहीं थी, सफर के दौरान रुकने की कोई सिलसिलेवार व्यवस्था नहीं थी। यात्रा के शुरू से अन्त तक वही लोग और जानवर रहने वाले थे। सफर के दौरान एक दिन में अधिकतम बीस-बाइस मील की दूरी तय की जा सकती थी। पालकी से सफर के लिए ज़रूरी है कि पालकी उठाने के लिए आठ लोगों को अनुबन्धित किया जाए। इसके अलावा सामान-असबाब के लिए अलग से। पालकी उठाने वालों को अपना खर्च निकालने के बाद आठ रुपया महीना से ज़्यादा नहीं मिलता।

पालकी की यात्रा खर्चीली होती है क्योंकि पालकी ढोने वालों को किए जाने वाले भुगतान में यात्रा के अन्य खर्च और पालकी की वापसी का भुगतान भी करना होता है। ऊँट पर सफर करना भी खर्चीला है लेकिन ऊँट की पीठ पर सफर सुकून भरा नहीं होता। इसलिए मैंने तय किया कि सफर के लिए कम खर्चीला साधन बैलगाड़ी ठीक रहेगी।

चूँकि मैं अकेले सफर करने वाली थी इसलिए मेरे मित्र डॉ. स्प्रेंजर ने सफर की समस्त ज़रूरी तैयारियाँ करवाईं। उन्होंने गाड़ी वाले के साथ हिन्दुस्तानी में लिखित अनुबन्ध किया जिसके मुताबिक यात्रा शुरू करने से पहले मुझे किराए का आधा यानी 15 रुपए अभी देना है और शेष 15 रुपए कोटा पहुँचने के बाद देना होगा। गाड़ीवाला मुझे 14 दिन में कोटा पहुँचाएगा। यदि सफर में इससे ज़्यादा दिन लगते हैं तो मैं 3 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से कटौती करने की अधिकारी हूँ। स्प्रेंजर ने अपने विश्वसनीय अर्दली को

इस सफर में मेरे साथ भेजा। अर्दली की पत्नी ने मेरी यात्रा की सभी तैयारियाँ करवाईं।

दिल्ली से कोटा के रास्ते में आसपास के इलाकों में एकरसता है। एक जैसे खेत, घास के मैदान, फलों के बगीचे। यहाँ मक्का एक फीट ऊँचा हो गया है। लेकिन पीले फूलों वाले पौधे भी बड़ी संख्या में साथ में हैं। इसलिए यह बता पाना मुश्किल है कि मक्का या खरपतवार, क्या देखा जा रहा है।

कपास की खेती यहाँ काफी महत्व की है। भारतीय कपास के पौधे उतने ऊँचे और मोटे नहीं होते जितने मिस्र में होते हैं। वैसे यह भी माना जाता है कि कपास की गुणवत्ता पौधे की ऊँचाई पर निर्भर नहीं करती और इसीलिए इस देश की कपास महीन और बेहतरीन है।

कोटा के सफर के अन्तिम दिन मैंने अफीम के खेत देखे। वो एक भव्य दृश्य पेश कर रहे थे। अफीम के पौधों की पत्तियाँ मोटी व चमकदार और फूल बड़े और विविध रंगीन धारियों के साथ। पॉपी से अफीम के निष्कर्षण का तरीका सरल लेकिन बेहद धीमा है। शाम के समय कच्चे पॉपी के ऊपरी सिरों पर कई जगहों पर चीरा लगाया जाता है। इन चीरों से सफेद तरल बहकर आता है। यह तरल जैसे ही हवा के सम्पर्क में आता है गाढ़ा होकर बूँद की तरह जम जाता है। अगली सुबह पॉपी पर जम गई बूँदों को चाकू की मदद से खुरचकर इकट्ठा किया जाता है। पॉपी के सिर और तने को कुचलकर, उबालकर कम मात्रा में अफीम प्राप्त की जाती है।

कई किताबों में और खासकर ज़िम्मरमैन की किताब - पॉकेट बुक ऑफ ट्रैवल्स - में मैंने पढ़ा था कि भारत में अफीम के पौधे चालीस फुट तक ऊँचे होते हैं। और अफीम के पौधे पर लगने वाला केप्सूल या डोडा इतना बड़ा होता है जितना कि किसी छोटे बच्चे का सिर। लेकिन मैंने पाया कि यह सब ठीक नहीं है। अफीम के पौधे तीन-चार फीट तक ऊँचे होते हैं और डोडा आकार में मुर्गी के अण्डे के बराबर होता है।

सफर के तेरहवें दिन हम कोटा पहुँच गए। सफर पूरा होने का सन्तोष मुझे, गाड़ीवाले और सहायकों – सभी को था। गाड़ीवाले ने मुझसे उतना ही किराया लिया जितना तय किया गया था, विदेशी होने के बावजूद अतिरिक्त कुछ नहीं लिया। मुझे सफर के दौरान वो सब सुविधाएँ दी गईं जो उनके धर्म के नियमों के तहत मिल सकती थीं। मैंने अपनी रातें खुले कमरे या खुले आसमान के नीचे गरीब और निचले तबकों के लोगों के साथ बिताईं। लेकिन मुझे कभी किसी बुरे व्यवहार (वचन या कर्म) का सामना नहीं करना पड़ा। मेरा कभी कोई सामान चोरी नहीं हुआ। जब कभी मैं बच्चों को ब्रेड, चीज़,

चॉकलेट या ऐसा ही कुछ सामान देती थी तो बच्चों के माता-पिता कृतज्ञ भाव से अपना धन्यवाद दर्शाते थे। काश, यूरोपीय लोग इस बात को जान पाते कि किस तरह बाल-प्रकृति वाले दिलों को ध्यान देकर और दयालुता दिखाकर जीता जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्य से यूरोपीय लोग इन पर बल और तुच्छता की भावना से शासन कर रहे हैं।

***

आयदा ने कोटा से उज्जैन तक का सफर ऊँट की पीठ पर बैठकर किया। उज्जैन-इन्दौर-बुरहानपुर होते हुए अजन्ता और वहाँ से बम्बई। अप्रैल 1848 में आयदा जहाज़ पर सवार होकर अपने अगले सफर के लिए रवाना होती हैं।

यहाँ आयदा के सफर का वर्णन रोक कर औपनिवेशिक काल की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने की कोशिश करेंगे।

आयदा के सफर के बारे में पढ़ते हुए यह भी ख्याल आता है कि उन्नीसवीं सदी में पर्यटन के लिहाज़ से काफी यात्राएँ की जाने लगी थीं और अधिकारी वर्ग एवं अध्येताओं के अलावा सामान्य लोग भी यात्रा कर रहे थे। सामान्य लोग कोई प्रोफेशनल यात्री नहीं थे - जो भौगोलिक, वैज्ञानिक या जनजातीय समूहों का अध्ययन करने आए हों। इस लेख के शुरू में औपनिवेशिक काल में भारत की यात्रा करने वाली कुछ महिलाओं के नाम लिए गए हैं, इनमें से ऐलिज़ा फे, अन कैथेरिन इलवुड व एमली ईडन उपन्यास-कविता जैसी विधाओं में लिखने वाली साहित्यकारा थीं।

औपनिवेशिक काल में भारत आने वाले यात्रियों में कुछ घुम्मकड़ थे जो अपने पैसों से, दोस्तों से चन्दा जुगाड़कर, राज्य से वित्तीय मदद लेकर यात्राएँ कर रहे थे। आयदा भी इन्हीं में से एक थीं। आयदा को ऑस्ट्रिया की सरकार ने इस यात्रा के लिए सौ पाउण्ड की प्रोत्साहन राशि दी थी।

यात्रा करने वाले लोगों को ध्यान में रखते हुए ट्रैवलर्स गाइड, किसी देश के भौगोलिक, सामाजिक-आर्थिक जीवन के ताने-बाने के बारे में नज़रिया बनाने वाले विचारों, का प्रकाशन भी होने लगा था। इन सबके साथ अनेक यात्री अपने अवलोकनों, विश्लेषणों को भी लिखने लगे थे। यात्रा वृत्तान्त या प्रियजनों को खत लिखकर किसी देश-समाज के बारे में लिखने की साहित्य विधा भी मशहूर होने लगी थी। यदि आपको याद हो तो जूल्स वर्न का उपन्यास - अराउंड द वर्ल्ड इन ऐटी डेज़ - सन् 1873 में लिखा गया काल्पनिक यात्रा का ऐसा ही एक ताना-बाना है। लेकिन जानकारियाँ इतनी सटीक हैं मानो वाकई किसी यात्री का लिखा विवरण हो।

ब्रिटिश-कालीन भारत को लेकर दुनिया के कई देशों में एक छवि रूढ़ हो चुकी थी। आयदा के वृत्तान्त से यह झलकता है कि वो भी भारत के लोगों, भारत की वनस्पतियों को लेकर कुछ गलत फहमियों के साथ यहाँ आई थीं। लेकिन अच्छी बात यह है कि वो सच्चाई से रू-ब-रू होती हैं और सुनी-सुनाई बातों तक अपने को सीमित नहीं रखतीं।

औपनिवेशिक काल में भारत में सैंकड़ों यूरोपीय लोग प्रशासनिक सेवाओं, फौज, मिशनरी भावना, व्यापार-कारोबार के सिलसिले में भारत आ रहे थे। इनमें से कई ने खत, डायरी, संस्मरण, प्रशासनिक रिपोर्ट, गेज़ेटियर आदि के मार्फत ब्रिटिश-कालीन भारत के बारे में काफी कुछ लिखा है। इस वजह से इस दौर के इतिहास लेखन के लिए किसी एक स्रोत पर बहुत निर्भरता नहीं दिखती। बस, आयदा जैसी घुमन्तू महिला के लेखन का एक खास पक्ष यह है कि वे एक महिला के नज़रिए से कुछ पहलुओं को देखने-समझने की कोशिश करती हैं।

अन्तिम बात, भारत में भी तो सदियों से लोग देश के भीतर खूब यात्राएँ करते थे। फिर हमारे यहाँ यात्रा वृत्तान्त क्यों नहीं लिखे गए? क्या हमारे लोगों को यात्रा वृत्तान्त लिखने का शौक नहीं था, या उनके यात्रा वृत्तान्तों को हिफाज़त से संरक्षित नहीं किया जा सका? आप क्या सोचते हैं इस बारे में?

कुछ सवाल आपके लिए

1. आयदा के यात्रा वृत्तान्त में ऐसे कौन-से प्रसंग हैं जहाँ आपको लगता है कि आयदा से भारतीय समाज को समझने में भूल-चूक हुई है?
2. ऐसे कौन-से प्रसंग हैं जहाँ आयदा पूर्व-अवधारणाओं से विचलित हुईं?
3. बनारस की वेधशाला देखकर आयदा यह क्यों कहती हैं कि यहाँ साधारण दूरबीन भी नहीं है। क्या बनारस की वेधशाला, उस समय की यूरोपीय वेधशालाओं के मुकाबले कुछ कमतर थी?

माधव केलकर: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

संदर्भ सूची - *अ वूमन्स जर्नी अराउंड द वर्ल्ड* - आयदा लौरा फिफर।